विवेगे धम्म माहिए

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

विवेक ही धर्म है। विवेक का अर्थ है– बुद्धि के अनुसार कार्य करना। विवेकी व्यक्ति जीवन में सुखी रहता है। जो बिना विचारे कार्य करता हैं वह पश्चाताप करता है। कबीरदासजी ने लिखा है–

बिना विचारे जो करे सो पाछे पछताय।
काम बिगाड़े आपनो जग में होय हसाय।।

विवेकशील व्यक्ति धर्म, कर्म में विश्वास करता हैं और शास्त्रोंक्त विधि से कार्य करता है। ऐसा व्यक्ति मानव धर्म में विश्वास करता है और धर्म के मूलमन्त्र को जीवन में उतारता है। व्यवहारिक जीवन में भी विवेक का बहुत महत्व है। जैसे सोने से पहले विद्युत बल्ब को बंद कर देना चाहिए। यदि बल्ब जलता रहता है तो अनेक प्रकार के कीड़े–मकोड़े आकर के गंदगी फैलाते है, जिससे अनेक प्रकार के रोगों के फैलने का डर रहता है। घर पर यदि डिब्बा बन्द पदार्थ रखा गया है। उसको यदि समय पर न देखा जाये तो उसमें कीड़े–मकोड़े पड़ जायेंगे। उसको खाने पर नुकसान होगा। यह असावधानी है। एक परिवार में कई सदस्य रहते है। सभी को अपनी जिम्मेदारी महसूस करनी चाहिए। किसी कार्य में यदि विलम्ब हो रहा है तो सन्तुलन बनाये रखना चाहिए। विवेक को नहीं खोना चाहिए। विवेक ही धर्म है। धर्म ही भारतीय संस्कृति का प्राण है। धर्म के कारण ही हम अध्यात्मवादी बने हैं। धर्म बहुत ही व्यापक शब्द है। इसके अंतर्गत भावों की शुद्धता, मन की निर्मलता और सात्विक विचार का अधिक महत्व है। धर्म मूलतः किसी वस्तु का सहज गुण है। जैसे पानी का धर्म शीतलता, अग्नि का धर्म उष्णता और पृथ्वी का धर्म गंध है। इसी प्रकार जितने भी पदार्थ हैं, उन सबका स्वाभाविक धर्म होता है। जब पदार्थों में विकृति उत्पन्न की जाती है तो उनके गुण धर्म भी बदल जाते हैं। आत्मा एक ऐसा तत्व है जिसमें किसी प्रकार की विकृति नहीं आती है। यह अपने स्वरूप में चैतन्य युक्त है, शेष जितने भी पदार्थ हैं, वे भौतिक तत्व हैं। उन पदार्थों में परिवर्तन, परिवर्धन होता रहता है। आत्मा और जड़ का जब संयोग होता है तो जड़ पदार्थ भी आत्मवत

प्रतीत होने लगता है। शरीर जड़ है और आत्मा चेतन। शरीर से जब आत्मा का संयोग होता है तो जड़ शरीर भी आत्मवत् प्रतीत होने लगता है। शरीर से अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कार्य किये जाते हैं। मूलतः आत्मा के शुद्धि और अशुद्धि का कोई प्रश्न नहीं है। शरीर में शुद्धता और अशुद्धता देखी जाती है। यदि मानव अच्छा कर्म करता है तो पुण्यलोक की प्राप्ति होती है और यदि बुरा कार्य करता है तो उसे नरक की प्राप्ति होती है। इसीको ध्यान में रखकर यह बात कही गयी है कि विवेक ही धर्म है और धर्म आत्मा को शुद्ध करता है। आत्मा को न तो आंखों से देखा जा सकता है, न वाणी से कहा जा सकता है, न तो अन्य इन्द्रियों से उसे जाना जा सकता है, न तपस्या और कर्म से ही उसे जाना जा सकता है। जिसके द्वारा सारी ज्ञानेन्द्रियां अपने–अपने विषय का ज्ञान कराती हैं, उसे किस साधन से जाना जाय। इसलिये कहा गया है कि 'ज्ञानप्रसादेन तं पश्यते' अर्थात् ज्ञान के द्वारा ही उसे जाना जा सकता है।

जप, तप निखिलकर्मानुष्ठान ये सारे साधन आत्मविषयक आचार में परिगणित हैं, किन्तु ये केवल चित्त शुद्धि तक ही सीमित हैं। शुद्ध चित्त में ज्ञान का प्राकट्य उसी प्रकार होता है, जैसे स्वच्छ कांच में प्रतिबिम्बोपलब्धि होती है। पुरुष या आत्मा को चेतन तत्त्व तथा प्रकृति को अचेतन या जड़तत्त्व कहा गया है। पुरुष के स्वरूप को बतलाते हुये यहां कहा गया है कि पुरुष नित्य, साक्षी, केवल, निस्त्रैगुण्य, माध्यस्थ उदासीन, द्रष्टा और अकर्त्ता है। पुरुष चेतन है। चेतन ही विषयों का ज्ञाता तथा द्रष्टा होता है। इसे अचेतन नहीं प्राप्त कर सकता। आत्मा ही वह द्रव्य है जिसमें बुद्धि, सुख–दुःख, राग–द्वेष, इच्छा प्रयत्न आदि गुण रहते हैं। ये गुण शरीर के नहीं आत्मा के ही हो सकते हैं। आत्मा देह, इन्द्रिय आदि से भिन्न है, नित्य और व्यापक है। मन से उसका प्रत्यक्ष होता है तथा मैं जानता हूं, मैं करता हूं, मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं इत्यादि से आत्मा का अस्तित्व प्रकट होता है। मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर है। पत्ते पर स्थित ओस बिन्दु की तरह हवा के झकोरे खाकर नाशवान है। इस छोटे से आयु खंड में जिसने जितना धर्म कर्म कर लिया उसका जीवन उतना ही सार्थक है और जिसने व्यर्थ में ही जीवन को गवा दिया वह अपने जीवन के मूल्य को नहीं समझ पाया। जीवनकाल में धर्म ही मनुष्य को त्राण दे सकता है। धर्म की व्याख्या करने के लिए इसके लौकिक और पारलौकिक स्वरूप

को समझना आवश्यक है। लौकिक धर्म वह धर्म है जिसे हम इस लोक में करते हैं और उसका फल भोगते हैं। पारलौकिक धर्म इस लोक से परे है और वहीं मानव जीवन की सच्ची कमाई है। इसी धर्म को प्राप्त करने के लिए मानव को प्रयास करना चाहिए। इस तथ्य की सत्यता को हृदयंगम कर भारतीय ऋषियों ने अपने वेद ज्ञान के संस्मरणों, निष्कर्षों को स्मृति शास्त्र के रूप में मानव समाज के हितार्थ प्रगट किया। जिससे वे भोगवाद की आसुरीधारा में न बहकर आत्मकल्याण का सर्वप्रथम ध्यान रखें और अर्थ तथा काम के साथ ही धर्म और मोक्ष के साधन के लिये भी प्रयत्नशील रहें। मनुष्य का आध्यात्मिक विकास तभी सम्भव है, जब वह अपना आचरण शुद्ध रखे और संयम नियम का पालन करता रहे।